84

लहर

जयशंकर "प्रसाद"

परिचय

जन्म—माघ शुक्ल दशमी सं० १९४६

मृत्यु—कार्तिक शुक्ल एकादशी सं० १९९४

'सुंघनीसाहु' के नाम से प्रसिद्ध, काशी के एक प्रतिष्ठित, धनी और उदार घराने में श्री जयशंकर प्रसाद जी का जन्म हुआ था।

प्रसाद जी ने अंग्रेजी की शिक्षा ८वें दर्जे तक स्कूल में पायी थी। परन्तु घर पर उन्हें अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत की अच्छी शिक्षा मिली। उस समय के काशी के अच्छे कवियों के सत्संग से बाल्यकाल से ही उनकी कविता के प्रति रुचि जागृत हो गयी थी।

पन्द्रह वर्ष की उम्र से वे लिखने लगे थे। संवत् १९६३ में 'भारतेन्दु' में प्रथम बार उनकी कविता प्रकाशित हुई। इसके बाद उन्हीं की प्रेरणा से निकले -'इन्दु' मासिक में नियमित रूप से उनकी कविता, कहानी, नाटक और निबन्ध प्रकाशित होने लगे।

प्रसाद जी ने नवीन युग का द्वार हिन्दी में खोला था। वे कविता की नवीन धारा के प्रवर्तक और उसके सर्वमान्य श्रेष्ठ कवि थे। हिन्दी के नाटक-साहित्य में उनकी देन सब से अधिक है और वे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार के रूप में भी विख्यात हैं। कथा-साहित्य भी उनसे कीर्तिमान बना है। १९११ ई० से, जब हिन्दी के अपने मौलिक कहानी-लेखक नहीं थे, तब से उसके भण्डार को उन्होंने भरा है।

कथा-साहित्य में प्रसाद-स्कूल, अपनी विशिष्ट शैली के कारण, अपना एक अलग ऊँचा स्थान रखता है। साहित्य के इन विविध अंगों की पूर्ति के साथ-साथ उन्होंने साहित्य तथा खोज सम्बन्धी निबन्ध भी लिखे हैं, जिनका स्थान हिन्दी-साहित्य में महत्वपूर्ण है।

लहर

H
811.6
P 886 L
H
811.6
P886L

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SIMLA

सूचना

'प्रसाद' जी की स्फुट कविताओं का यह नवीन संग्रह है। कवि के नाते वे हिन्दी की आधुनिक कविता शैली के निर्माता माने जाते हैं। अतः साहित्य-क्षेत्र में यह संग्रह यदि अपना विशेष गौरव स्थापित करे तो हमें आश्चर्य न होगा। क्योंकि अनेक दृष्टियों से यह संग्रह कविता-मर्मज्ञों को अपनी ओर आग्रहपूर्वक देखने के लिए बाध्य करेगा।

—प्रकाशक

CATALOGUED

Library IIAS, Shimla
H 811.6 P 886 L
00046426

Acc No. 46426

H
811.6
P886 L

क्रम

प्रथम पंक्ति		पृष्ठ
उठ उठ री लघु लघु लोल लहर !	...	नौ
निज अलकों के अन्धकार में	...	दस
मधुप गुनगुना कर कह जाता—	...	ग्यारह
अरी बरुणा की शान्त कछार !	...	बारह
ले चल वहाँ भुलावा देकर,	...	चौदह
हे सागर संगम अरुण नील !	...	पन्द्रह
उस दिन जब जीवन के पथ में,	...	सत्रह
बीती विभावरी जाग री !	...	उन्नीस
आँखों से अलख जगाने को,	...	बीस
आह रे, वह अधीर यौवन !	...	इक्कीस
तुम्हारी आँखों का बचपन !	...	तेईस
अब जागो जीवन के प्रभात !	...	चौबीस
कोमल कुसुमों की मधुर रात !	...	पचीस
कितने दिन जीवन जल-निधि में—	...	छब्बीस
वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे ?	...	सत्ताईस
मेरी आँखों की पुतली में	...	अट्ठाईस
जग की सजल कालिमा रजनी में—	...	उनतीस

प्रथम पंक्ति		पृष्ठ
वसुधा के अञ्चल पर	...	तीस
अपलक जगती हो एक रात !	...	इकतीस
जगती की मंगलमयी उषा बन	...	बत्तीस
चिर तृषित कण्ठ से तृप्ति-विधुर	...	चौंतीस
काली आँखों का अन्धकार	...	सैंतीस
अरे कहीं देखा है तुमने	...	अड़तीस
शशि-सी वह सुन्दर रूप-विभा	...	उनतालीस
अरे आ गयी है भूली-सी—	...	चालीस
निधरक तूने ठुकराया तब	...	बयालीस
ओ री मानस की गहराई !	...	तैंतालीस
मधुर माधवी सन्ध्या में—	...	चवालीस
अन्तरिक्ष में अभी सो रही—	...	पैंतालीस

अन्य कविताएँ

अशोक की चिन्ता	...	छियालीस
शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण	...	इक्यावन
पेशोला की प्रतिध्वनि	...	छप्पन
प्रलय की छाया	...	उनसठ

लहर

उठ उठ री लघु लघु लोल लहर।
करुणा की नव अँगराई-सी,
मलयानिल की परछाईं-सी,
इस सूखे तट पर छिटक छहर!
शीतल कोमल चिर कम्पन-सी,
दुर्ललित हठीले बचपन-सी,
तू लौट कहाँ जाती है री—
यह खेल खेल ले ठहर ठहर!
उठ-उठ गिर-गिर फिर-फिर आती,
नर्तित पद-चिह्न बना जाती,
सिकता की रेखायें उभार—
भर जाती अपनी तरल-सिहर!
तू भूल न री, पंकज वन में,
जीवन के इस सूनेपन में,
ओ प्यार-पुलक से भरी ढुलक!
आ चूम पुलिन के विरस अधर!

निज अलकों के अन्धकार में तुम कैसे छिप आओगे ?
इतना सजग कुतूहल ! ठहरो, यह न कभी बन पाओगे !
आह,चूम लूँ जिन चरणों को चाँप-चाँप कर उन्हें नहीं—
दुख दो इतना, अरे अरुणिमा ऊषा-सी वह उधर बही।
वसुधा चरण-चिह्न-सी बन कर यहीं पड़ी रह जावेगी।
प्राची रज कुंकुम ले चाहे अपना भाल सजावेगी।
देख न लूँ, इतनी ही तो है इच्छा ? लो,सिर झुका हुआ।
कोमल किरण-उँगलियों से ढँक दोगे यह दृग खुला हुआ।
फिर कह दोगे; पहचानो तो मैं हूँ कौन बताओ तो।
किन्तु उन्हीं अधरों से, पहले उनकी हँसी दबाओ तो।
सिहर भरे निज शिथिल मृदुल अंचल को अधरों से पकड़ो।
बेला बीच चली है चंचल बाहु-लता से आ जकड़ो।

*　　*　　*

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ ?
इसमें क्या है धरा, सुनो।
मानस जलधि रहे चिर चुम्बित—
मेरे क्षितिज ! उदार बनो।

मधुप गुनगुना कर कह जाता कौन कहानी यह अपनी,
मुरझाकर गिर रहीं पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी ।
इस गम्भीर अनन्त नीलिमा में असंख्य जीवन-इतिहास—
यह लो, करते ही रहते हैं अपना व्यङ्ग्य-मलिन उपहास ।
तब भी कहते हो—कह डालूँ दुर्बलता अपनी बीती !
तुम सुनकर सुख पाओगे, देखोगे—यह गागर रीती ।
किन्तु कहीं ऐसा न हो कि तुम ही खाली करने वाले—
अपने को समझो, मेरा रस ले अपनी भरने वाले ।
यह विडम्बना ! अरी सरलते तेरी हँसी उड़ाऊँ मैं ।
भूलें अपनी, या प्रवञ्चना औरों की दिखलाऊँ मैं ।
उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की ।
अरे खिलखिला कर हँसते होने वाली उन बातों की ।
मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया ?
आलिङ्गन में आते-आते मुस्क्या कर जो भाग गया ।
जिसके अरुण-कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया में ।
अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में ।
उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पन्था की ।
सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों मेरी कन्था की ?
छोटे-से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ ?
सुनकर क्या तुम भला करोगे— मेरी भोली आत्म-कथा ?
अभी समय भी नहीं—थकी सोई है मेरी मौन व्यथा ।

●

अरी बरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के कानन कुञ्ज !
जगत नश्वरता से लघु त्राण, लता, पादप, सुमनों के पुञ्ज !
तुम्हारी कुटियों में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।
स्वर्ग की वसुधा से शुचि संधि, गूँजता था जिससे संसार।

अरी बरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

तुम्हारे कुञ्जों में तल्लीन, दर्शनों के होते थे वाद।
देवताओं के प्रादुर्भाव, स्वर्ग के स्वप्नों के संवाद।
स्निग्ध तरु की छाया में बैठ, परिषदें करती थीं सुविचार—
भाग कितना लेगा मस्तिष्क, हृदय का कितना है अधिकार ?

अरी बरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

छोड़कर पार्थिव भोग विभूति, प्रेयसी का दुर्लभ वह प्यार।
पिता का वक्ष भरा वात्सल्य, पुत्र का शैशव सुलभ दुलार।
दुःख का करके सत्य निदान, प्राणियों का करने उद्धार।
सुनाने आरण्यक संवाद, तथागत आया तेरे द्वार।

अरी बरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

मुक्ति जल की वह शीतल बाढ़, जगत की ज्वाला करती शांत ।
तिमिर का हरने को दुख भार, तेज अमिताभ अलौकिक कांत ।
देव कर से पीड़ित विक्षुब्ध, प्राणियों से कह उठा पुकार--
तोड़ सकते हो तुम भव-बन्ध, तुम्हें है यह पूरा अधिकार ।

अरी बरुणा की शान्त कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

छोड कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुगति सुधार ।
दुःख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार ।
विश्व-मानवता का जय घोष, यहीं पर हुआ जलद-स्वर-मन्द्र ।
मिला था वह पावन आदेश, आज भी साक्षी हैं रवि चन्द्र ।

अरी बरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

तुम्हारा वह अभिनन्दन दिव्य, और उस यश का विमल प्रचार ।
सकल वसुधा को दे सन्देश, धन्य होता है बारम्बार ।
आज कितनी शताब्दियों बाद, उठी ध्वंसों में वह झंकार ।
प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगन्त, विश्व वाणी का बने विहार ।*

●

* मूलगन्ध कुटी विहार के उपलक्ष्य में ।

ल ह

ल ह र

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे धीरे ।

जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी--
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे ।

जहाँ साँझ-सी जीवन छाया,
ढीले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो,
ताराओं की पाँति घनी रे ।

जिस गम्भीर मधुर छाया में—
विश्व चित्र-पट चल माया में—
विभुता विभु-सी पड़े दिखाई,
दुख-सुख वाली सत्य बनी रे ।

श्रम-विश्राम क्षितिज वेला से--
जहाँ सृजन करते मेला से—
अमर जागरण उषा नयन से--
बिखराती हो ज्योति घनी रे !

हे सागर सङ्गम अरुण नील !
अतलान्त महा गंभीर जलधि—
तज कर अपनी यह नियत अवधि,
लहरों के भीषण हासों में
आकर खारे उच्छ्वासों में
युग युग की मधुर कामना के—
बन्धन को देता जहाँ ढील।
हे सागर सङ्गम अरुण नील।
पिङ्गल किरणों-सी मधु-लेखा,
हिम-शैल बालिका को तूने कब देखा !
कलरव संगीत सुनाती,
किस अतीत युग की गाथा गाती आती !
आगमन अनन्त मिलन बनकर—
बिखराता फेनिल तरल खील।
हे सागर सङ्गम अरुण नील !

आकुल अकूल बनने आती,
अब तक तो है वह आती,
देवलोक की अमृत कथा की माया—
छोड़ हरित कानन की आलस छाया—
विश्राम माँगती अपना।
जिसका देखा था सपना—
निस्सीम व्योम तल नील अंक में,
अरुण ज्योति की झील बनेगी कब सलील ?
हे सागर सङ्गम अरुण नील !

●

उस दिन जब जीवन के पथ में,
छिन्न पात्र ले कम्पित कर में,
मधु-भिक्षा की रटन अधर में,
इस अनजाने निकट नगर में,
आ पहुँचा था एक अकिञ्चन।
उस दिन जब जीवन के पथ में,
लोगों की आँखें ललचाईं,
स्वयं माँगने को कुछ आईं,
मधु सरिता उफनी अकुलाई,
देने को अपना संचित धन।
उस दिन जब जीवन के पथ में,
फूलों ने पंखुरियाँ खोलीं,
आँखें करने लगीं ठिठोली,
हृदयों ने न सम्हाली झोली;
लुटने लगे विकल पागल मन।

ल ह र

उस दिन जब जीवन के पथ में,
छिन्न पात्र में था भर आता—
वह रस बरबस था न समाता,
स्वयं चकित-सा समझ न पाता
कहाँ छिपा था, ऐसा मधुवन,
उस दिन जब जीवन के पथ में,
मधु-मङ्गल की वर्षा होती,
काँटों ने भी पहना मोती,
जिसे बटोर रही थी रोती—
आशा, समझ मिला अपना धन।

●

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर पनघट में डुबो रही—
तारा-घट ऊषा नागरी ।
खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा ,
किसलय का अञ्चल डोल रहा ;
लो यह लतिका भी भर लाई—
मधु मुकुल नवल रस गागरी ।
अधरों में राग अमन्द पिये ,
अलकों में मलयज बन्द किये—
तू अब तक सोई है आली ।
आँखों में भरे विहाग री !

●

आँखों से अलख जगाने को;
यह आज भैरवी आई है।
ऊषा-सी आँखों में कितनी,
मादकता भरी ललाई है।
कहता दिगन्त से मलय पवन,
प्राची की लाज भरी चितवन—
है रात घूम आई मधुवन,
यह आलस की अँगराई है।
लहरों में यह क्रीड़ा चंचल,
सागर का उद्वेलित अञ्चल।
है पोंछ रहा आँखें छलछल,
किसने यह चोट लगाई है?

●

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No............
Date..............
SIMLA

आह रे, वह अधीर यौवन !
मत्त-मारुत पर चढ़ उद्भ्रान्त ,
बसरने ज्यों मदिरा अश्रान्त—
सिन्धु वेला-सी घन मंडली,
अखिल किरनों को ढँककर चली,
भावना के निस्सीम गगन ,
बुद्धि चपला का क्षण नर्तन—
चूमने को अपना जीवन ,
चला था वह अधीर यौवन !
आह रे, वह अधीर यौवन
अधर में वह अधरों की प्यास ,
नयन में दर्शन का विश्वास ,
धमनियों में आलिङ्गन मयी—
वेदना लिये व्यथाएँ नयी,
टूटते जिससे सब बन्धन ,
सरस-सीकर से जीवन-कन ,
बिखर भर देते अखिल भुवन,
वही पागल अधीर यौवन !

46426

आह रे, वह अधीर यौवन !
मधुर जीवन के पूर्ण विकास ,
विश्व-मधु-ऋतु के कुसुम-विकास ,
ठहर, भर आँखों देख नयी—
भूमिका अपनी रंगमयी,
अखिल की लघुता आई बन—
समय का सुन्दर वातायन ,
देखने को अदृष्ट नर्तन ।
अरे अभिलाषा के यौवन !
आह रे, वह अधीर यौवन !!

●

तुम्हारी आँखों का बचपन !
खेलता था जब अल्हड़ खेल,
अजिर के उर में भरा कुलेल,
हारता था हँस-हँस कर मन,
आह रे, वह व्यतीत जीवन !
तुम्हारी आँखों का बचपन !
साथ ले सहचर सरस वसन्त,
चंक्रमण करता मधुर दिगन्त,
गूँजता किलकारी निस्वन,
पुलक उठता तब मलय-पवन।
तुम्हारी आँखों का बचपन !
स्निग्ध संकेतों में सुकुमार,
बिछल, चल थक जाता तब हार,
छिड़कता अपना गीलापन,
उसी रस में तिरता जीवन।
तुम्हारी आँखों का बचपन !
आज भी है क्या नित्य किशोर—
इसी क्रीड़ा में भाव विभोर—
सरलता का वह अपनापन—
आज भी है क्या मेरा धन !
तुम्हारी आँखों का बचपन !

●

अब जागो जीवन के प्रभात !
    वसुधा पर ओस बने बिखरे
    हिमकन आँसू जो क्षोभ भरे
    ऊषा बटोरती अरुण गात !
अब जागो जीवन के प्रभात !
    तम-नयनों की ताराएँ सब—
    मुँद रहीं किरण दल में हैं अब,
    चल रहा सुखद यह मलय वात !
अब जागो जीवन के प्रभात !
    रजनी की लाज समेटो तो,
    कलरव से उठ कर भेटों तो,
    अरुणांचल में चल रही बात !
जागो अब जीवन के प्रभात !

●

कोमल कुसुमों की मधुर रात !
शशि-शतदल का यह सुख विकास,
जिसमें निर्मल हो रहा हास,
उसकी साँसों का मलय बात !
कोमल कुसुमों की मधुर रात !
वह लाज भरी कलियाँ अनन्त,
परिमल-घूँघट ढँक रहा दन्त,
कँप-कँप चुप-चुप कर रही बात ।
कोमल कुसुमों की मधुर रात !
नक्षत्र-कुमुद की अलस माल,
वह शिथिल हँसी का सजल जाल—
जिसमें खिल खुलते किरन पात ।
कोमल कुसुमों की मधुर रात !
कितने लघु-लघु कुड्मल अधीर,
गिरते बन शिशिर-सुगन्ध-नीर,
हो रहा विश्व सुख-पुलक गात ।

कितने दिन जीवन जल-निधि में—
विकल अनिल से प्रेरित होकर
लहरी, कूल चूमने चल कर
उठती-गिरती-सी रुक रुक कर
सृजन करेगी छवि गति-विधि में !

कितनी मधु-संगीत-निनादित
गाथाएँ निज ले चिर-संचित
तरल तान गावेगी वंचित !
पागल-सी इस पथ निरवधि में !

दिनकर हिमकर तारा के दल
इसके मुकुर वक्ष में निर्मल
चित्र बनायेंगे निज चंचल !
आशा की माधुरी अवधि में !

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे ?
जब सावन-घन-सघन बरसते--
इन आँखों की छाया भर थे !

सुरधनु रंजित नव-जलधर से—
भरे, क्षितिज व्यापी अम्बर से,
मिले चूमते जब सरिता के,
हरित कूल युग मधुर अधर थे ।

प्राण पपीहा के स्वर वाली—
बरस रही थी जब हरियाली--
रस जलकन मालती-मुकुल से—
जो मदमाते गन्ध विधुर थे ।

चित्र खींचती थी जब चपला,
नील मेघ-पट पर वह विरला,
मेरी जीवन-स्मृति के जिसमें—
खिल उठते वे रूप मधुर थे ।

कितने दिन जीवन जल-निधि में—
विकल अनिल से प्रेरित होकर
लहरी, कूल चूमने चल कर
उठती-गिरती-सी रुक रुक कर
सृजन करेगी छवि गति-विधि में !

कितनी मधु-संगीत-निनादित
गाथाएँ निज ले चिर-संचित
तरल तान गावेगी वंचित !
पागल-सी इस पथ निरवधि में !

दिनकर हिमकर तारा के दल
इसके मुकुर वक्ष में निर्मल
चित्र बनायेंगे निज चंचल !
आशा की माधुरी अवधि में !

●

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे ?
जब सावन-घन-सघन बरसते--
इन आँखों की छाया भर थे !

सुरधनु रंजित नव-जलधर से—
भरे, क्षितिज व्यापी अम्बर से,
मिले चूमते जब सरिता के,
हरित कूल युग मधुर अधर थे ।

प्राण पपीहा के स्वर वाली—
बरस रही थी जब हरियाली--
रस जलकन मालती-मुकुल से—
जो मदमाते गन्ध विधुर थे ।

चित्र खींचती थी जब चपला,
नील मेघ-पट पर वह विरला,
मेरी जीवन-स्मृति के जिसमें—
खिल उठते वे रूप मधुर थे ।

●

मेरी आँखों की पुतली में
तू बन कर प्रान समा जा रे !

जिससे कन कन में स्पन्दन हो,
मन में मलयानिल चन्दन हो,
करुणा का नव अभिनन्दन हो—
वह जीवन गीत सुना जा रे !

खिंच जाय अधर पर वह रेखा—
जिसमें अंकित हो मधु लेखा,
जिसको यह विश्व करे देखा,
वह स्मिति का चित्र बना जा रे !

जग की सजल कालिमा रजनी में मुखचन्द्र दिखा जाओ ।
हृदय-अँधेरी झोली इसमें ज्योति भीख देने आओ ।
प्राणों की व्याकुल पुकार पर एक मीड़ ठहरा जाओ ।
प्रेम-वेणु की स्वर-लहरी में जीवन-गीत सुना जाओ ।

*   *   *

स्नेहालिङ्गन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो ।
जीवन-धन ! इस जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो ।

●

वसुधा के अंचल पर
यह क्या कन-कन सा गया बिखर ?
जल शिशु की चञ्चल क्रीड़ा-सा,
जैसे सरसिज दल पर ।

लालसा निराशा में ढलमल
वेदना और सुख में विह्वल
यह क्या है रे मानव जीवन ?
कितना है रहा निखर ।

मिलने चलते जब दो कन,
आकर्षण-मय चुम्बन बन,
दल के नस-नस में बह जाती—
लघु-लघु धारा सुन्दर ।

हिलता-डुलता चञ्चल दल
ये सब कितने हैं रहे मचल ?
कन-कन अनन्त अम्बुधि बनते ,
कब रुकती लीला निष्ठुर,

तब क्यों रे फिर यह सब ,क्यों ?
यह रोष भरी लाली क्यों ?
गिरने दे नयनों से उज्ज्वल
आँसू के कन मनहर ।
वसुधा के अंचल पर ।

●

अपलक जगती हो एक रात !

सब सोये हों इस भूतल में,
अपनी निरीहता सम्बल में,
चलती हो कोई भी न बात !

पथ सोये हों हरियाली में,
हों, सुमन सो रहे डाली में,
हो अलस उनींदी नखत पाँत !

नीरव प्रशान्ति का मौन बना,
चुपके किसलय से बिछल छना,
थकता हो पंथी मलय-व्रात !

वक्षस्थल में जो छिपे हुए—
सोते हों हृदय अभाव लिए—
उनके स्वप्नों का हो न प्रात !

●

जगती की मंगलमयी उषा बन ,
करुणा उस दिन आई थी ,
जिसके नव गैरिक अंचल की प्राची में भरी ललाई थी ।
भय-संकुल रजनी बीत गई ,
भव की व्याकुलता दूर गई ,
घन-तिमिर-भार के लिए तड़ित स्वर्गीय किरण बन आई थी ।
खिलती पँखुरी पंकज-वन की ,
खुल रही आँख ऋषि पत्तन की,
दुख की निर्ममता निरख कुसुम-रस के मिस जो भर आई थी ।
कल-कलनादिनि बहती-बहती—
प्राणी दुख की गाथा कहती—
वरुणा द्रव होकर शान्ति-वारि शीतलता-सी भर लाई थी ।
पुलकित मलयानिल कूलों में ,
भरता अञ्जलि था फूलों में ,
स्वागत था अभया वाणी का निष्ठुरता लिये बिदाई थी ।
उन शान्त तपोवन कुञ्जों में ,
कुटियों, तृण-वीरुध पुञ्जों में ,
उटजों में था आलोक भरा कुसुमित लतिका झुक आई थी ।

मृग मधुर जुगाली करते से,
खग कलरव में स्वर भरते से,
विपदा से पूछ रहे किसकी पदध्वनि सुनने में आई थी।
प्राची का पथिक चला आता,
नभ पद-पराग से भर जाता,
वे थे पुनीत परमाणु दया ने जिनसे सृष्टि बनाई थी।
तप की तारुण्यमयी प्रतिमा,
प्रज्ञा पारमिता की गरिमा,
इस व्यथित विश्व की चेतनता गौतम सजीव बन आई थी।
उस पावन दिन की पुण्यमयी,
स्मृति लिये धरा है धैर्यमयी,
जब धर्म चक्र के सतत प्रवर्तन की प्रसन्न ध्वनि छाई थी।
युग-युग की नव मानवता को,
विस्तृत वसुधा की विभुता को,
कल्याण संघ की जन्म भूमि आमंत्रित करती आई थी।
स्मृति-चिह्नों की जर्जरता में,
निष्ठुर कर की बर्बरता में,
भूलें हम वह सन्देश न जिसने फेरी धर्म दुहाई थी।*

---

* मूलगन्ध कुटी विहार के समारोहोत्सव में मंगलाचरण के रूप में गाया गया।

चिर तृषित कंठ से तृप्त-विधुर
वह कौन अकिञ्चन अति आतुर
अत्यन्त तिरस्कृत अर्थ सदृश
ध्वनि कम्पित करता बार-बार ,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार ।

सागर लहरों सा आलिङ्गन
निष्फल उठकर गिरता प्रतिदिन
जल वैभव है सीमा-विहीन
बह रहा एक कन को निहार,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार ।

अकरुण वसुधा से एक झलक
वह स्मित मिलने को रहा ललक
जिसके प्रकाश में सकल कर्म
बनते कोमल उज्ज्वल उदार ,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

फैलाती है जब उषा राग
जग जाता है उसका विराग
वञ्चकता, पीड़ा, घृणा, मोह
मिलकर बिखेरते अंधकार,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

ढल विरल डालियाँ भरी मुकुल
झुकतीं सौरभ रस लिये अतुल
अपने विषाद विष में मूर्च्छित
काँटों से विंध कर बार बार,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

जीवन रजनी का अमल इन्दु
न मिला स्वाती का एक बिन्दु
जो हृदय सीप में मोती बन
पूरा कर देता लक्षहार,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

चिर तृषित कंठ से तृप्त-विधुर
वह कौन अकिञ्चन अति आतुर
अत्यन्त तिरस्कृत अर्थ सदृश
ध्वनि कम्पित करता बार-बार ,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार ।

सागर लहरों सा आलिङ्गन
निष्फल उठकर गिरता प्रतिदिन
जल वैभव है सीमा-विहीन
बह रहा एक कन को निहार,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार ।

अकरुण वसुधा से एक झलक
वह स्मित मिलने को रहा ललक
जिसके प्रकाश में सकल कर्म
बनते कोमल उज्ज्वल उदार ,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

फैलाती है जब उषा राग
जग जाता है उसका विराग
वञ्चकता, पीड़ा, घृणा, मोह
मिलकर बिखेरते अंधकार ,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार ।

ढल विरल डालियाँ भरी मुकुल
झुकतीं सौरभ रस लिये अतुल
अपने विषाद विष में मूर्च्छित
काँटों से विंध कर बार बार ,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार ।

जीवन रजनी का अमल इन्दु
न मिला स्वाती का एक बिन्दु
जो हृदय सीप में मोती बन
पूरा कर देता लक्षहार ,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार ।

पागल रे ! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब
आँसू के कन, कन से गिनकर
यह विश्व लिये है ऋण उधार ,
तू क्यों फिर उठता है पुकार ?
मुझको न मिला रे कभी प्यार ।

काली आँखों का अन्धकार
जब हो जाता है वार पार,
मद पिये अचेतन कलाकार
उन्मीलित करता क्षितिज पार—

वह चित्र ! रंग का ले बहार
जिसमें है केवल प्यार प्यार !

केवल स्मितिमय चाँदनी रात
तारा किरणों से पुलक गात,
मधुपों मुकुलों के चले घात,
आता है चुपके मलय वात,

सपनों के बादल का दुलार।
तब दे जाता है बूँद चार।

तब लहरों-सा उठकर अधीर
तू मधुर व्यथा-सा शून्य चीर,
सूखे किसलय-सा भरा पीर
गिर जा पतझड़ का पा समीर।

पहने छाती पर तरल हार।
पागल पुकार फिर प्यार प्यार !

पागल रे ! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब
आँसू के कन, कन से गिनकर
यह विश्व लिये है ऋण उधार,
तू क्यों फिर उठता है पुकार ?
मुझको न मिला रे कभी प्यार ।

काली आँखों का अन्धकार
जब हो जाता है वार पार,
मद पिये अचेतन कलाकार
उन्मीलित करता क्षितिज पार—

वह चित्र ! रंग का ले बहार
जिसमें है केवल प्यार प्यार !

केवल स्मितिमय चाँदनी रात
तारा किरणों से पुलक गात,
मधुपों मुकुलों के चले घात,
आता है चुपके मलय वात,

सपनों के बादल का दुलार।
तब दे जाता है बूँद चार।

तब लहरों-सा उठकर अधीर
तू मधुर व्यथा-सा शून्य चीर,
सूखे किसलय-सा भरा पीर
गिर जा पतझड़ का पा समीर।

पहने छाती पर तरल हार।
पागल पुकार फिर प्यार प्यार !

अरे कहीं देखा है तुमने
मुझे प्यार करने वाले को ?
मेरी आँखों में आकर फिर
आँसू बन ढरने वाले को ?

सूने नभ में आग जलाकर
यह सुवर्ण-सा हृदय गला कर
जीवन-सन्ध्या को नहला कर
रिक्त जलधि भरने वाले को ?

रजनी के लघु-लघु तम कन में
जगती की ऊष्मा के वन में
उस पर पड़ते तुहिन सघन में
छिप, मुझसे डरने वाले को ?

निष्ठुर खेलों पर जो अपने
रहा देखता सुख के सपने
आज लगा है क्या वह कँपने
देख मौन मरने वाले को ?

●

शशि-सी वर सुन्दर रूप विभा
  चाहे न मुझे दिखलाना।
उसकी निर्मल शीतल छाया
  हिमकन को बिखरा जाना।
संसार स्वप्न बनकर दिन-सा
  आया है नहीं जगाने,
मेरे जीवन के सुख निशीथ!
  जाते जाते रुक जाना।
हाँ, इन जाने की घड़ियों में,
  कुछ ठहर नहीं जाओगे?
छाया-पथ में विश्राम नहीं,
  है केवल चलते जाना।
मेरा अनुराग फैलने दो,
  नभ से अभिनय कलरव में,
जाकर सूनेपन के तम में—
  बन किरन कभी आ जाना।

●

अरे आ गई है भूली-सी—
    यह मधु-ऋतु दो दिन को,
छोटी-सी कुटिया में रच दूँ,
    नई व्यथा साथिन को!
वसुधा नीचे ऊपर नभ हो,
    नीड़ अलग सब से हो,
झाड़खण्ड के चिर पतझड़ में
    भागो सूखे तिनको!
आशा से अंकुर झूलेंगे
    पल्लव पुलकित होंगे,
मेरे किसलय का लघु भव यह,
    आह खलेगा किन को?
सिहर भरी कँपती आवेंगी
    मलयानिल की लहरें,
चुम्बन लेकर और जगाकर—
    मानस नयन नलिन को।
जवा कुसुम-सी उषा खिलेगी
    मेरी लघु प्राची में,

हँसी भरे उस अरुण अधर का
राग रँगेगा दिन को
अन्धकार का जलधि लाँघ कर
आवेंगी शशि-किरनें,
अन्तरिक्ष छिड़केगा कन कन
निशि में मधुर तुहिन को
इस एकान्त सृजन में कोई
कुछ बाधा मत डालो
जो कुछ अपने सुन्दर से हैं
दे देने दो इनको।

निधरक तूने ठुकराया तब
मेरे टूटी मृदु प्याली को,
उसके सूखे अधर माँगते
तेरे चरणों की लाली को।
जीवन-रस के बचे हुए कन,
बिखरे अम्बर में आँसू बन,
वही दे रहा था सावन घन—
वसुधा की इस हरियाली को।
निदय हृदय में हूक उठी क्या,
सोकर पहली चूक उठी क्या,
अरे कसक वह कूक उठी क्या,
झंकृत कर सूखी डाली को?
प्राणों के प्यासे मतवाले—
ओ झंझा से चलने वाले।
ढलें और विस्मृति के प्याले,
सोच न कृति मिटने वाली को।

●

ओ री मानस की गहराई !
तू सुप्त, शान्त कितनी शीतल—
निर्वात मेघ ज्यों पूरित जल—
नव मुकुर नीलमणि फलक अमल,
ओ पारदर्शिका ! चिर चंचल—
यह विश्व बना है परछाई।
तेरा विषाद द्रव तरल-तरल
मूर्छित न रहे ज्यों पिये गरल
सुख-लहर उठा री सरल सरल
लघु लघु सुन्दर सुन्दर अविरल,
—तू हँस जीवन की सुघराई ?
हँस, झिलमिल हो लें तारा गन,
हँस, खिलें कुञ्ज में सकल सुमन,
हँस, बिखरें मधु मरन्द के कन,
बन कर संसृति के नव श्रम कन,
—सब कह दें 'वह राका आई।'
हँस लें भय शोक प्रेम या रण,
हँस ले काला पट ओढ़ मरण,
हँस लें जीवन के लघु लघु क्षण,
देकर निज चुम्बन के मधुकण,
नाविक अतीत की उतराई।

मधुर माधवी संध्या में जब रागारुण रवि होता अस्त,
विरल मृदुल दल वालो डालों से उलझा समीर जब व्यस्त,
प्यार भरे श्यामल अम्बर में जब कोकिल की कूक अधीर
नृत्य-शिथिल बिछली पड़ती है वहन कर रहा उसे समीर,
तब क्यों तू अपनी आँखों में जल भरकर उदास होता,
और चाहता इतना सूना—कोई भी न पास होता?
वञ्चित रे! यह किस अतीत की विकल कल्पना का परिणाम,
किसी नयन की नील निशा में क्या कर चुका क्षणिक विश्राम,
क्या झंकृत हो जाते हैं उन स्मृति किरणों के टूटे तार—
सूने नभ में स्वर तरंग का फैलाकर मधु पारावार?
नक्षत्रों से जब प्रकाश की रश्मि खेलने आती है,
तब कमलों की सी तब सन्ध्या क्यों उदास हो जाती है?

अन्तरिक्ष में अभी सो रही है ऊषा मधुबाला ,
अरे खुली भी नहीं अभी तो प्राची की मधुशाला ।
सोता तारक किरन पुलक रोमावलि मलयज वात ,
लेते अँगड़ाई नीड़ों में अलस विहग मृदुगात ,
रजनी रानी की बिखरी है म्लान कुसुम की माला ,
अरे भिखारी ! तू चल पड़ता लेकर टूटा प्याला ।
गूँज उठी तेरी पुकार—'कुछ मुझको भी दे देना—
कन कन बिखरा विभव दान कर अपना यश ले लेना ।'
दुख-सुख के दोनों डग भरता वहन कर रहा गात ,
जीवन का दिन पथ चलने में कर देगा तू रात ,
तू बढ़ जाता अरे अकिंचन, छोड़ करुण स्वर अपना ,
सोने वाले जग कर देखें अपने सुख का सपना ।

अशोक की चिन्ता

जलता है यह जीवन-पतङ्ग !
जीवन कितना ? अति लघु क्षण ,
ये शलभ पुंज से कण-कण ,
तृष्णा वह अनलशिखा वन—
दिखलाती रक्तिम यौवन ।
जलने की क्यों न उठे उमंग ?

है ऊँचा आज मगध-शिर—
पदतल में विजित पड़ा गिरि ,
दूरागत क्रन्दन-ध्वनि फिर
क्यों गूँज रही है अस्थिर—
कर विजयी का अभिमान भंग ?

इन प्यासी तलवारों से ,
इनकी पैनी धारों से ,
निर्दयता की मारों से ,
उन हिंसक हुंकारों से ,
नत-मस्तक आज हुआ कलिंग ।

कलिंग-विजय में भीषण नर-संहार देखकर सम्राट् अशोक की विरक्ति ।

यह सुख कैसा शासन का ?
शासन रे मानव मन का !
गिरि-भार बना-सा तिनका ,
यह घटाटोप दो दिन का--
फिर रवि-शशि-किरणों का प्रसंग !

यह महादम्भ का दानव--
पीकर अनङ्ग का आसव--
कर चुका महाभीषण रव ,
सुख दे प्राणी को मानव
तज विजय पराजय का कुढंग ।

संकेत कौन दिखलाती ,
मुकुटों को सहज गिराती ,
जयमाला सूखी जाती ,
नश्वरता गीत सुनाती ,
तब नहीं थिरकते हैं तुरंग ।

वैभव की यह मधुशाला ,
जग पागल होने वाला ,
अब गिरा--उठा मतवाला ,
प्याले में फिर भी हाला ,
यह क्षणिक चल रहा राग-रंग ।

काली काली अलकों में ,
आलस, मद नत पलकों में ,
मणि मुक्ता की झलकों में ,
सुख की प्यासी ललकों में ,
देखा क्षण-भंगुर है तरंग ।

फिर निर्जन उत्सव-शाला ,
नीरव नूपुर श्लथ माला ,
सो जाती है मधु बाला ,
सूखा लुढ़का है प्याला ,
बजती वीणा न वहाँ मृदंग ।

इस नील विषाद गगन में—
सुख चपला-सा दुख-घन में ,
चिर विरह नवीन मिलन में ,
इस मरु-मरीचिका-वन में—
उलझा है चञ्चल मन-कुरंग ।

आँसू कन-कन ले छल छल—
सरिता भर रही दृगंचल ,
सब अपने में हैं चञ्चल ;
छूटे जाते सूने पल ,
खाली न काल का है निषंग ।

[illegible]

वेदना विकल यह चेतन ,
जड़ का पीड़ा से नर्तन ,
लय-सीमा में यह कम्पन ,
अभिनयमय है परिवर्तन ,
चल रहा यही कब से कुढंग ।

करुणा गाथा गाती है ,
यह वायु बही जाती है ,
ऊषा उदास आती है ,
मुख पीला ले जाती है ,
वन मधु पिङ्गल सन्ध्या सुरंग ।

आलोक किरन है आती ,
रेशमी डोर खिंच जाती ,
दृग पुतली कुछ नच पाती ,
फिर तम पट में छिप जाती ,
कलरव कर सो जाते विहंग ।

जब पल भर का है मिलना ,
फिर चिर वियोग में झिलना ,
एक ही प्रात है खिलना ,
फिर सूख धूल में मिलना ,
तब क्यों चटकीला सुमन रंग ?

संसृति के विक्षत पग रे !
वह चलती है डगमग रे !
अनुलेप सदृश तू लग रे !
मृदु दल बिखेर इस मग रे !
कर चुके मधुर मधुपान भृंग।

भुनती वसुधा तपते नग,
दुखिया है सारा अग-जग,
कंटक मिलते हैं प्रति पग,
जलती सिकता का यह मग,
वह जा बन करुणा की तरंग,
जलता है यह जीवन-पतंग।

शेरसिंह का शस्त्र समर्पण

"ले लो यह शस्त्र है
गौरव ग्रहण करने का रहा कर में—
अब तो न लेश मात्र।
लालसिंह! जीवित कलुष पञ्चनद का
देख, दिये देता है
सिंहों का समूह नख दन्त आज अपना।"
"अरी रण-रङ्गिनी!
सिक्खों के शौर्य भरे जीवन की संगिनी!
कपिशा हुई थी लाल तेरा पानी पान करें।
दुर्मद दुरन्त धर्म दस्युओं की त्रासिनी—
निकल, चली जा तू प्रतारणा के कर से।"
"अरी वह तेरी रही अन्तिम जलन क्या?
तोपें मुँह खोले खड़ी देखती थीं त्रास से
चिलियान वाला में।
आज के पराजित जो विजयी थे कल ही,
उनके समर वीर कर में तू नाचती
लप-लप करती थी—जीभ जैसे यम की!

उठी तू न लूट त्रास भय के प्रचार को,
दारुण निराशा भरी आँखों से देखकर
दृप्त अत्याचार को
एक पुत्र-वत्सला दुराशामयी विधवा
प्रकट पुकार उठी प्राण भरी पीड़ा से—
और भी ;

जन्मभूमि दलित विकल अपमान से
त्रस्त हो कराहती थी
कैसे फिर रुकती ?"
"आज विजयी हो तुम
और हैं पराजित हम
तुम तो कहोगे, इतिहास भी कहेगा यही,
किन्तु यह विजय प्रशंसा भरी मन की—
एक छलना है ।
वीरभूमि पञ्चनद वीरता से रिक्त नहीं ।
काठ के हों गोले जहाँ
आटा बारूद हो

और पीठ पर हो दुरन्त दंशनों का त्रास
छाती लड़ती हो भरी आग, बाहु बल से
उस युद्ध में तो बस मृत्यु ही विजय है ।

सतलज के तट पर मृत्यु श्यामसिंह की—
देखी होगी तुमने भी वृद्ध वीर मूर्ति वह
तोड़ा गया पुल प्रत्यावर्तन के पथ में
अपने प्रवञ्चकों से ।

लिखता अदृष्ट था विधाता वाम कर से ।
छल में विलीन बल--बल में विषाद था—
विकल-विलास का ।

यवनों के हाथों से स्वतंत्रता को छीन कर,
खेलता था यौवन-विलासी मत्त पञ्चनद—
प्रणय विहीन एक वासना की छाया में ।
फिर भी लड़े थे हम निज प्राण पण से ।

कहेगी शतद्रु-शत-संगरों की साक्षिणी,
सिक्ख थे सजीव--
स्वत्व रक्षा में प्रबुद्ध थे ।
जीना जानते थे ।
मरने को मानते थे सिक्ख ।
किन्तु आज उनकी अतीत वीर गाथा हुई—
जीत होती जिसकी
वही है आज हारा हुआ ।"

"ऊर्जस्वित रक्त और उमङ्ग भरा मन था
जिन युवकों के मणिबन्धों में अबन्ध बल
इतना भरा था
जो उलटता शतघ्नियों को ।

गोले जिनके थे गेंद
अग्निमयी क्रीड़ा थी ।
रक्त की नदी में सिर ऊँचा छाती कर
तैरते थे ।

वीर पञ्चनद के सपूत मातृभूमि के
सो गये प्रतारणा की थपकी लगी उन्हें
छल-बलिवेदी पर आज सब सो गये ।

रूप भरी, आशा भरी, यौवन अधीर भरी,
पुतली प्रणयिनी का बाहुपाश खोलकर,
दूध भरी दूध सी दुलार भरी माँ की गोद,
सूनी कर सो गये ।

हुआ है सूना पञ्चनद ।

भिक्षा नहीं माँगता हूँ
आज इन प्राणों की

क्योंकि, प्राण जिसका आहार, वही इसकी
रखवाली आप करता है, महाकाल ही,
शेर पञ्चनद का प्रवीर रणजीत सिंह
आज मरता है देखो ;
सो रहा है पञ्चनद आज उसी शोक में ।
यह तलवार लो
ले लो वह थाती है ।"

पेशोला की प्रतिध्वनि

अरुण करुण बिम्ब !
वह निर्धूम भस्म रहित ज्वलन पिण्ड ?
विकल विवर्तनों से
विरल प्रवर्तनों में
श्रमित नमित सा--
पश्चिम के व्योम में है आज निरलम्ब सा।
आहुतियाँ विश्व की अजस्र लुटाता रहा—
सतत सहस्त्र कर माला से--
तेज ओज बल जो वदान्यता कदम्ब-सा ।
पेशोला की उर्मियाँ हैं शान्त, घनी छाया में—
तट तरु है चित्रित तरल चित्रसारी में ।
झोंपड़े खड़े हैं बने शिल्प से विषाद के—
दग्ध अवसाद से ।
धूसर जलद खंड भटक पड़े हैं,
जैसे विजन अनन्त में ।
कालिमा बिखरती है सन्ध्या के कलंक सी,
दुन्दुभि-मृदङ्ग-तूर्य शान्त स्तब्ध, मौन हैं ।
फिर भी पुकार सी है गूँज रही व्योम में—

"कौन लेगा भार यह ?
कौन विचलेगा नहीं ?
दुर्बलता इस अस्थिमांस की—
ठोंक कर लोहे से, परख कर वज्र से,
प्रलयोल्का-खंड के निकष पर कस कर
चूर्ण अस्थि पुञ्ज सा हँसेगा अट्टहास कौन ?
साधना पिशाचों की बिखर चूर-चूर होके
धूलि सी उड़ेगी किस दृप्त फूत्कार से।
कौन लेगा भार यह ?
जीवित है कौन ?
साँस चलती है किसकी
कहता है कौन ऊँची छाती कर, मैं हूँ—
—मैं हूँ— मेवाड़ में,

अरावली शृङ्ग-सा समुन्नत सिर किस का ?
बोलो, कोई बोलो—अरे क्या तुम सब मृत हो ?

आह, इस खेवा की !—
कौन थामता है पतवार ऐसे अंधड़ में
अन्धकार-पारावार गहन नियति-सा—
उमड़ रहा है ज्योति-रेखा-हीन क्षुब्ध हो।

खींच ले चला है—
काल-धीवर अनन्त में,
साँस, सफरी सी अटकी है किसी आशा में।
आज भी पेशोला के—
तरल जल-मंडलों में,
वही शब्द घूमता-सा—
गूँजता विकल है।
किन्तु वह ध्वनि कहाँ?
गौरव की काया पड़ी माया है प्रताप की
वही मेवाड़ !
किन्तु आज प्रतिध्वनि कहाँ?"

प्रलय की छाया

थके हुए दिन के निराशा भरे जीवन की
सन्ध्या है आज भी तो धूसर क्षितिज में !
और उस दिन तो ;
निर्जन जलधि-वेला रागमयी सन्ध्या से--
सीखती थी सौरभ से भरी रंग-रलियाँ ।
दूरागत वंशी-रव--
गूँजता था धीवरों की छोटी-छोटी नावों से ।
मेरे उस यौवन के मालती-मुकुल में ।
रंध्र खोजती थीं, रजनी की नीली किरणें
उसे उकसाने को हँसाने को ।
पागल हुई मैं अपनी ही मृदुगन्ध से--
कस्तूरी मृग जैसी ।
पश्चिम जलधि में ,
मेरी लहरीली नीली अलकावली समान
लहरें उठती थीं मानो चूमने को मुझको ,
और साँस लेता था समीर मुझे छूकर ।

नृत्यशीला शैशव की स्फूर्तियाँ
दौड़ कर दूर जा खड़ी हो हँसने लगीं ।
मेरे तो,
चरण हुए थे विजड़ित मधु-भार से ।
हँसती अनंग-बालिकाएँ अन्तरिक्ष में
मेरी उस क्रीड़ा के मधु अभिषेक में
नत-शिर देख मुझे ।
कमनीयता थी जो समस्त गुजरात की
हुई एकत्र इस मेरी अंगलतिका में ।
पलकें मदिर भार से थीं झुकी पड़ती ।
नन्दन की शत-शत दिव्य कुसुम-कुन्तला
अप्सराएँ मानो वे सुगन्ध की पुतलियाँ
आ-आकर चूम रहीं अरुण अधर मेरा
जिसमें स्वयं ही मुस्कान खिल पड़ती ।
नूपुरों की झनकार घुली-मिली जाती थी
चरण-अलक्तक की लाली से
जैसे अन्तरिक्ष की अरुणिमा
पी रही दिगन्त व्यापी सन्ध्या-संगीत को ।
कितनी मादकता थी ?
लेने लगी झपकी मैं
सुख-रजनी की विश्रम्भ-कथा सुनती ;

जिसमें थी आशा
अभिलाषा से भरी थी जो
कामना के कमनीय मृदुल प्रमोद में
जीवन सुरा की वह पहली ही प्याली थी।"
"आँखें खुलीं ;
देखा मैंने चरणों में लोटती थी
विश्व की विभव राशि ,
और थे प्रणत वहीं गुर्ज्जर-महीप भी ?
वह एक सन्ध्या थी।"
"श्यामा सृष्टि युवती थी
तारक-खचित नीलपट परिधान था
अखिल अनन्त में
चमक रही थीं लालसा की दीप्त मणियाँ—
ज्योतिमयी, हासमयी, विकल विलासमयी।
बहती थीं धीरे-धीरे सरिता
उस मधु यामिनी में
मदकल मलय पवन ले ले फूलों से
मधुर मरन्द-बिन्दु उसमें मिलाता था !
चाँदनी के अंचल में।
हरा भरा पुलिन अलस नींद ले रहा।

सृष्टि के रहस्य-सी परखने को मुझको
तारिकाएँ झाँकती थीं ।
शत-शत दलों की
मुद्रित मधुर गन्ध भीनी-भीनी रोम में
बहाती लावण्य धारा ।

स्मर-शशि किरणें ,
स्पर्श करती थीं इस चन्द्रकान्त मणि को
स्निग्धता बिछलती थी जिस मेरे अंग पर ।
अनुराग पूर्ण था हृदय उपहार में
गुर्जरेश पाँवड़े बिछाते रहे पलकों के ,
तिरते थे—

मेरी अँगड़ाइयों की लहरों में
पीते मकरन्द थे—
मेरे इस अधखिले आनन-सरोज का
कितना सोहाग था, कैसा अनुराग था ?
खिली स्वर्ण मल्लिका की सुरभित वल्लरी-सी
गुर्जर के थाले में मरन्द वर्षा करती मैं ।"
"और परिवर्तन वह !
क्षितिज पटी को आन्दोलित करती हुई
नील मेघ-माला-सी

नियति-नटी थी आई सहसा गगन में
तड़ित विलास सी नचाती भौंहें अपनी ।"

"पावक-सरोवर में अवभृथ स्नान था
आत्म-सम्मान-यज्ञ की वह पूर्णाहुति
सुना--जिस दिन पद्मिनी का जल मरना
सती के पवित्र आत्म गौरव की पुण्य-गाथा
गूँज उठी भारत के कोने-कोने जिस दिन;
उन्नत हुआ था भाल
महिला-महत्त्व का।

दृप्त मेवाड़ के पवित्र बलिदान का
ऊर्जित आलोक
आँख खोलता था सब की।
सोचने लगी थीं कुल-वधुएँ, कुमारिकाएँ
जीवन का अपने भविष्य नये सिर से;

उसी दिन
बँधने लगी थी विषमय परतंत्रता।

देव-मन्दिरों की मूक घण्टा-ध्वनि
व्यंग्य करती थी जब दीन संकेत से
जाग उठी जीवन की लाज भरी निद्रा से।

मैं भी थी कमला ,
रूप-रानी गुजरात की ।
सोचती थी--
पद्मिनी जली थी स्वयं किन्तु मैं जलाऊँगी--
वह दावानल ज्वाला
जिसमें सुलतान जले ।
देखे तो प्रचण्ड रूप-ज्वाला-सी धधकती
मुझको सजीव वह अपने विरुद्ध ।
आह ! कैसी वह स्पर्द्धा थी ?
स्पर्द्धा थी रूप की
पद्मिनी की वाह्य रूप-रेखा चाहे तुच्छ थी ,
मेरे इस साँचे से ढले हुए शरीर के
सन्मुख नगण्य थी ।
देखकर मुकुर पवित्र चित्र पद्मिनी का
तुलना कर उससे ,
मैंने समझा था यही ।
वह अति रञ्जित-सी तूलिका चितेरी की
फिर भी कुछ कम थी ।
किन्तु था हृदय कहाँ ?
बसा दिव्य
अपनी कमी थी इतरा चली हृदय की

लघुता चली थी माप करने महत्व की।
"अभिनय आरम्भ हुआ
अनिहलवाड़ा में अनल चक्र घूमा फिर
चिर अनुगत सौन्दर्य के समादर में
गुज्जरेश मेरी उन इंगितों में नाच उठे।
नारी के नयन! त्रिगुणात्मक ये सन्निपात
किसको प्रमत्त नहीं करते ?
धैर्य किसका ये नहीं हरते ?
वही अस्त्र मेरा था।
एक झिटके में आज
गुर्जर स्वतंत्र साँस लेता था सजीव हो।
क्रोध सुलतान का दग्ध करने लगा
दावानल बनकर
हरा-भरा कानन प्रफुल्ल गुजरात का।
बालकों की करुण पुकारें, और वृद्धों की
आर्तवाणी,
क्रन्दन रमणियों का,
भैरव संगीत बना, ताण्डव नृत्य-सा
होने लगा गुर्जर में।
अट्टहास करती सजीव उल्लास से
फाँद पड़ी मैं भी उस देश की विपत्ति में।

वही कमला हूँ मैं !
देख चिर सङ्गिनी रणाङ्गण में, रङ्ग में ,
मेरे वीर पति आह कितने प्रसन्न थे
बाधा, विघ्न, आपदाएँ ,
अपनी ही क्षुद्रता में टलतीं-बिचलतीं ।
हँसते वे देख मुझे
मैं भी स्मित करती ।

किन्तु शक्ति कितनी थी उस कृत्रिमता में ?
संबल बचा न जब कुछ भी स्वदेश में
छोड़ना पड़ा ही उसे ।
निर्वासित हम दोनों खोजते शरण थे,
किन्तु दुर्भाग्य पीछा करने में आगे था ।

"वह दुपहरी थी,
लू से झुलसाने वाली ; प्यास से जलाने वाली ।
थके सो रहे थे तरुछाया में हम दोनों
तुर्कों का एक दल आया झंझावात-सा ।
मेरे गुर्ज्जरेश !
आज किस मुख से कहूँ ?
सच्चे राजपूत थे ,
वह खड्ग लीला खड़ी देखती रही मैं वहीं

गत-प्रत्यागत में और प्रत्यावर्तन में
दूर वे चले गये ,
और हुई बन्दी मैं
वाह री नियति !
उस उज्ज्वल आकाश में
पद्मिनी की प्रतिकृति-सी किरणों में बन कर
व्यङ्ग-हास करती थी ।

एक क्षण भ्रम के भुलावे में डाल कर
आज भी नचाता वही ,
आज सोचती हूँ जैसे पद्मिनी थी कहती—
"अनुकरण कर मेरा"
समझ सकी न मैं ।

पद्मिनी की भूल जो थी उसे समझाने को
सिंहनी-सी दृप्त मूर्ति धारण कर
सन्मुख सुल्तान के
मारने की, मरने की—अटल प्रतिज्ञा हुई ।
उस अभिमान में
मैंने कहा था—छाती ऊँची कर उनसे—
"ले चलो मैं गुर्जर की रानी हूँ, कमला हूँ"
वाह री ! विचित्र मनोवृत्ति मेरी !

कैसा वह तेरा व्यंग्य परिहास-शील था ?
उस आपदा में आया ध्यान निज रूप का ।

रूप यह !
देखे तो तुरुष्कपति मेरा भी
यह सौन्दर्य देखे देखे यह मृत्यु भी
कितनी महान और कितनी अभूतपूर्व ?
वन्दिनी मैं बैठी रही
देखती थी दिल्ली कैसी विभव विलासिनी ।
यह ऐश्वर्य की दुलारी, प्यारी क्रूरता की
एक छलना सी, सजने लगी थी सन्ध्या में ।

कृष्णा वह आई फिर रजनी भी
खोलकर ताराओं की विरल दशन पंक्ति
अट्टहास करती थी दूर मानो व्योम में
जो सुन न पड़ा अपने ही कोलाहल में ।
कभी सोचती थी प्रतिशोध लेना पति का
कभी निज रूप सुन्दरता की अनुभूति
क्षण भर चाहती जगाना मैं
सुलतान ही के उस निर्मम हृदय में,
नारी मैं !
कितनी अबला थी और प्रमदा थी रूप की !

साहस उमड़ता था वेग-पूर्ण ओघ-सा
किन्तु हलकी थी मैं,
तृण बह जाता जैसे
वैसे मैं विचारों ही में तिरती-सी फिरती ;
कैसी अवहेलना थी यह मेरी शत्रुता की
इस मेरे रूप की ।

आज साक्षात होगा कितने महीनों पर
लहरी-सदृश उठती-सी गिरती-सी मैं
अद्भुत ! चमत्कार !! दृग निज गरिमा में
एक सौंदर्यमयी वासना की आँधी-सी
पहुँची समीप सुलतान के ।

तातारी दासियों ने मुझको झुकाना चाहा
मेरे ही घुटनों पर ,
किन्तु अविचल रही ।
मणि-मेखला में रही कठिन कृपाणी जो
चमकी वह सहसा
मेरे ही वक्ष का रुधिर पान करने को ।
किन्तु छिन गई वह
और निरुपाय मैं तो ऐंठ उठी डोरी-सी,
अपमान-ज्वाला में अधीर होके जलती ।

अन्त करने का और वहीं मर जाने का
मेरा उत्साह मन्द हो चला।
उसी क्षण बचकर मृत्यु महागर्त्त से सोचने लगी थी मैं
"जीवन सौभाग्य है; जीवन अलभ्य है।"
चारों ओर लालसा भिखारिणी-सी माँगती थी—
प्राणों के कण-कण दयनीय-स्पृहणीय
अपने विश्लेषण में रो उठे अकिंचन जो—
"जीवन अनन्त है,
इसे छिन्न करने का किसे अधिकार है?"
जीवन की सीमा मयी प्रतिमा
कितनी मधुर है?
विश्व भर से मैं जिसे छाती में छिपाये रही।
कितनी मधुर भीख माँगते हैं सब ही :—
अपना दल-अंचल पसार कर बन-राजी,
माँगती है जीवन का बिन्दु-बिन्दु ओस-सा
क्रन्दन करता-सा जलनिधि भी
माँगता है नित्य मानो जरठ भिखारी-सा
जीवन की धारा मीठी-मीठी सरिताओं से
व्याकुल हो विश्व-अन्ध तम से
भोर में ही माँगता है
"जीवन की स्वर्णमयी किरणें प्रभा भरी।

जीवन ही प्यारा है जीवन सौभाग्य है ।"
रो उठी मैं रोष भरी बात कहती हुई
"मार कर भी क्या मुझे मरने न दोगे तुम ?
मानती हूँ शक्तिशाली तुम सुलतान हो
और मैं हूँ बन्दिनी ।
राज्य है बचा नहीं,
किन्तु क्या मनुष्यता भी मुझमें रही नहीं
इतनी मैं रिक्त हूँ ।"
क्षोभ से भरा था कंठ फिर चुप हो रही,
शक्ति प्रतिनिधि उस दृप्त सुलतान की
अनुनय भरी वाणी गूँज उठी कान में ।
"देखता हूँ मरना ही भारत की नारियों का
एक गीत-भार है !
रानी ! तुम बन्दिनी हो मेरी प्रार्थनाओं में
पद्मिनी को खो दिया है
किन्तु तुमको नहीं !
शासन करोगी इन मेरी क्रूरताओं पर
निज कोमलता से--मानस की माधुरी से !
आज इस तीव्र उत्तेजना की आँधी में
सुन न सकोगी न विचार ही करोगी तुम
ठहरो विश्राम करो ।"

अति द्रुत गति से
कब सुलतान गये
जान सकी मैं न, और तब से
यह रंगमहल बना सुवर्ण पींजरा।
"एक दिन, संध्या थी ;
मलिन उदास मेरे हृदय पटल-सा
लाल-पीला होता था दिगन्त निज क्षोभ से।
यमुना प्रशान्त मन्द-मन्द निज धारा में।
करुण विषाद मयी
बहती थी धरा के तरल अवसाद-सी।
बैठी हुई कालिमा की चित्रपटी देखती
सहसा मैं चौंक उठी द्रुत पद-शब्द से

सामने था
शैशव से अनुचर
मानिक युवक अब
खिंच गया सहसा
पश्चिम-जलधि कूल का वह सुरम्य चित्र
मेरी इन दुखिया अँखड़ियों के सामने।
जिसको बना चुका था मेरा वह बालपन
अद्भुत कुतूहल औ' हँसी की कहानी से।

मैंने कहा :—
"कैसे तू अभागा यहाँ पहुँचा है मरने ?"
"मरने तो नहीं यहाँ जीवन की आशा में
आ गया हूँ रानी !—भला
कैसे मैं न आता यहाँ ?"
कह, वह चुप था ।
छुरे एक हाथ में
दूसरे से दोनों हाथ पकड़े हुए वहीं
प्रस्तुत थीं तातारी दासियाँ ।

सहसा सुलतान भी दिखाई पड़े ,
और मैं थी मूक गरिमा के इन्द्रजाल में ।

"मृत्यु दंड !"
वज्र-निर्घोष-सा सुनाई पड़ा भीषणतम—
मरता है मानिक !
गूँज उठा कानों में—
"जीवन अलभ्य है; जीवन सौभाग्य है ।"
उठी एक गर्व-सी
किन्तु झुक गई अनुनय की पुकार में
"उसे छोड़ दीजिए"—निकल पड़ा मुँह से ।
हँसे सुलतान; और अप्रतिभ होती मैं

शिवकुमार

जकड़ी हुई थी अपनी ही लाज-शृङ्खला में ।
प्रार्थना लौटाने का उपाय अब कौन था ?
अपने अनुग्रह के भार दबाये हुए
कहा सुलतान ने—

"जाने दो रानी की पहली यह आज्ञा है ।"
हाय रे हृदय ! तूने
कौड़ी के मोल बेचा जीवन का मणि-कोष
और आकाश को पकड़ने की आशा में
हाथ ऊँचा किये सिर दे दिया अतल में

"अन्तर्निहित थीं
लालसाएँ, वासनाएँ जितनी अभाव में
जीवन की दीनता में और पराधीनता में
पलने लगीं वे चेतना के अनजान में ।
धीरे-धीरे आती है जैसे मादकता
आँखों के अजान में, लड़ाई में ही छिपती ;
चेतना थी जीवन की फिर प्रतिशोध की ।
किन्तु किस युग से वासना के बिन्दु रहे सींचते
मेरे संवेदनों को ।
यामिनी के गूढ़ अन्धकार में
सहसा जो जाग उठे तारा-से

दुर्बलता को मानती-सी अवलम्ब मैं
खड़ी हुई जीवन की पिच्छिल-सी भूमि पर।
बिखरे प्रलोभनों को मानती-सी सत्य मैं
शासन की कामना में भूमी मतवाली हो।

एक क्षण, भावना के उस परिवर्तन का
कितना अजित था ?
जीवित हैं गुर्ज्जरेश ! कर्णदेव !
भेजा संदेश मुझे "शीघ्र अन्त कर दो
जीवन की लीला।"
लालसा की अर्द्ध कृति-सी !
उस प्रत्यावर्तन में प्राण जो न दे सके, हाँ
जीवित स्वयं हैं।

जियें फिर क्यों न सब अपनी ही आशा में ?
बन्दिनी हुई थी मैं अबला थी;
प्राणों का लोभ उन्हें फिर क्यों बचा सका ?
प्रेम कहाँ मेरा था ?
और मुझमें भी कैसे कहूँ शुद्ध प्रेम था।
मानिक कहता है, आह, मुझे मर जाने को
रूप ने बनाया रानी मुझे गुजरात की,
वही रूप मुझे आज प्रेरित था करता

भारतेश्वरी का पद लेने को ।
लोभ मेरा मूर्तिमान प्रतिशोध था बना
और सोचती थी मैं, आज हूँ विजयिनी
चिर पराजित सुलतान पद तल में ।
कृष्णागुरुवर्तिका
जल चुकी स्वर्ण पात्र के ही अभिमान में
एक धूम-रेखा मात्र शेष थी ,
उस निस्पन्द रंग मन्दिर के व्योम में
क्षीण-गन्ध निरवलम्ब ।
किन्तु मैं समझती थी, यही मेरा जीवन है ।
यह उपहार है, यह शृंगार है
मेरी रूप माधुरी का ।
मणि नूपुरों की बीन बजी, झनकार से
गूँज उठी रंगशाला इस सौन्दर्य की
विश्व था मनाता महोत्सव अभिमान का
आज विजयी था रूप
और साम्राज्य था नृशंस क्रूरताओं का
रूप माधुरी की कृपा-कोर को निरखता
जिसमें मदोद्धत कटाक्ष की अरुणिमा
व्यंग्य करती थी विश्व भर के अनुराग पर
अवहेलना से अनुग्रह थे बिखरते ।

जीवन के स्वप्न सब बनते बिगड़ते थे
भवें बल खातीं जब ;
लोगों की अदृष्ट लिपि लिखी-पढ़ी जाती थी
इस मुस्क्यान के, पद्मराग-उद्गम से
बहता सुगन्ध की सुधा का सोता मन्द-मन्द ।
रत्न राजि, सींची जाती सुमन-मरन्द से
कितनी ही आँखों की प्रसन्न नील ताराएँ
बनने को मुकुर-अचंचल, निस्पन्द थीं ।
इन्हीं मौन दृगों का चपल संकेत बन
शासन, कुमारिका से हिमालय-शृङ्ग तक
अथक अबाध और तीव्र-मेघ-ज्योति-सा

चलता था—
हुआ होगा बनना सफल जिसे देखकर
मंजु-मान केतन अनंग का ।
मुकुट पहनते थे सिर, कभी लोटते थे—
रक्त दिग्ध धरणी में रूप की विजय में ।
हरमें सुलतान की
देखतीं सशंक दृग कोरों से
निज अपमान को ।"
"बेच दिया

विश्व इन्द्रजाल में सत्य कहते हैं जिसे ;
उसी मानवता के आत्म सम्मान को ।"
जीवन में आता है परखने का
जिसे कोई एक क्षण ,
लोभ, लालसा या भय, क्रोध, प्रतिशोध के
उग्र कोलाहल में ,
जिसकी पुकार सुनाई ही नहीं पड़ती ।
सोचा यह उस दिन ;
जिस दिन अधिकार-लुब्ध उस दास ने ,
अन्त किया छल से काफूर ने
अलाउद्दीन का, मुमूर्षु सुलतान का ।
आँधी में नृशंसता की रक्त-वर्षा होने लगी
रूप वाले, शील वाले, प्यार से पले हुए
प्राणी राज-वंश के
मारे गये ।
वह एक रक्त मयी सन्ध्या थी ।
शक्तिशाली होना अहोभाग्य है
और फिर
बाधा-विघ्न-आपदा के तीव्र प्रतिघात का
सबल विरोध करने में कैसा सुख है ?—
इसका भी अनुभव हुआ था भली भाँति मुझे

किन्तु वह छलना थी मिथ्या अधिकार की ।
जिस दिन सुना अकिञ्चन परिवारी ने ;
आजीवन दास ने, रक्त से रँगे हुए ;
अपने ही हाथों पहना है राज का मुकुट ।
अन्त कर दास राजवंश का ,
लेकर प्रचंड प्रतिशोध निज स्वामी का
मानिक ने, खूसरू के नाम से
शासन का दण्ड किया ग्रहण सदर्प है ।
उसी दिन जान सकी अपनी मैं सच्ची स्थिति
मैं हूँ किस तल पर ?
सैकड़ों ही वृश्चिकों का डंक लगा एक साथ
मैं जो करने थी आई
उसे किया मानिक ने ।
खूसरू ने !!
उद्धत प्रभुत्व का
वात्याचक्र ! उठा प्रतिशोध-दावानल में
कह गया अभी-अभी नीच परिवारी वह !
"नारी यह रूप तेरा जीवित अभिशाप है
जिसमें पवित्रता की छाया भी पड़ी नहीं ।
जितने उत्पीड़न थे चूर हो दबे हुए ,
अपना अस्तित्व हैं पुकारते ,

नश्वर संसार में
ठोस प्रतिहिंसा की प्रतिध्वनि हैं चाहते :"
"लूटा था दृप्त अधिकार ने
जितना विभव, रूप, शील और गौरव को
आज वे स्वतन्त्र हो बिखरते हैं !
एक माया-स्तूप-सा
हो रहा है लोप इन आँखों के सामने ।
देख कमलावती !
ढुलक रही है हिम-बिन्दु-सी
सत्ता सौन्दर्य के चपल आवरण की ।
हँसती है वासना की छलना पिशाची-सी
छिपकर चारों ओर व्रीड़ा की अँगुलियाँ
करती संकेत हैं व्यंग्य उपहास में ।
ले चली बहाती हुई अन्ध के अतल में
वेग भरी वासना ।
अन्तक शरभ के-
काले काले पङ्ख ढकते हैं अन्ध तम से ।
पुण्य ज्योति हीन कलुषित सौन्दर्य का--
गिरता नक्षत्र नीचे कालिमा की धारा-सा
असफल सृष्टि सोती—
प्रलय की छाया में ।

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 46926
Date 2-2-74
SIMLA

I. I. A. S. LIBRARY

Acc. No.

This book was issued from the library on the date last stamped. It is due back within one month of its date of issue, if not recalled earlier.

सम्पूर्ण प्रसाद-साहित्य

कविता

कामायनी	७.५०
पाण्डुलिपि संस्करण	५०.००
आँसू	२.००
लहर	२.५०
झरना	२.५०
महाराणा का महत्त्व	०.७५
प्रेम-पथिक	१.००
करुणालय	१.२५
कानन-कुसुम	३.००
प्रसाद-संगीत	३.००

नाटक

स्कन्दगुप्त	३.००
अजातशत्रु	३.००
चन्द्रगुप्त	४.००
ध्रुवस्वामिनी	१.००
विशाख	२.५०
कामना	२.२५
जनमेजय का नागयज्ञ	२.००
राज्यश्री	२.००
एक घूंट	१.२५

उपन्यास

कंकाल	७.५०
तितली	६.००
इरावती	२.५०

कहानी-संग्रह

आकाशदीप	५.००
इन्द्रजाल	३.५०
प्रतिध्वनि	२.५०
आँधी	३.५०
छाया	३.००

विविध विषय

काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध	३.५०
चित्राधार	३.५०

प्रसाद-साहित्य के सहायक-ग्रन्थ

जयशंकर प्रसाद	: श्री नन्ददुलारे वाजपेयी	६.००
प्रसाद का काव्य	: डॉ० प्रेमशंकर	१६.००
प्रसाद साहित्य-कोश	: डॉ० हरदेव बाहरी	१२.५०
कामायनी-सौन्दर्य	: डॉ० फतह सिंह	१०.००

भारती भंडार

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

Library IIAS, Shimla
H 811.6 P 886 L
00046426